Shodhaamrit, Vol.-2; Issue-2 (July-Dec.) 2025 : Page No.-252-256

शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-2.0
Vol.-2; issue-2 (July-Dec.) 2025
Page No- 252-256

©2025 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

राहुल पटेल
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय.

Corresponding Author :
राहुल पटेल
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय.

भारतेन्दु के नाटकों में राष्ट्रीयता का निर्माण

शोधसार :- 19वीं शताब्दी में भारत औपनिवेशिक संक्रमण काल से गुजर रहा था। एक ओर अंग्रेजों की दमनकारी नीतियाँ, आर्थिक शोषण की व्यवस्था अपने चरम पर थी तो दूसरी ओर हम भारतीय अपने समाज की भाषा, संस्कृति अर्थव्यवस्था और सामाजिक अस्तित्व के गहरे संकट से जूझ रहे थे। औपनिवेशिक शक्ति हमारे देश की एकता और संस्कृति को रौंद रही थी तथा हमें हीन भावना और परतंत्रता से जीवन जीने को मजबूर कर रहीं थी। किंतु भारतीय समाज ने कभी दुश्मनों के सामने अपने पैर पीछे नहीं खींचे। समाज के लोगों को इन दुश्मनों से लड़ने और संघर्ष करने की प्रेरणा, कहीं न कहीं से राष्ट्रीयता को जन्म दे रही थी। पूरे देश में एक महत्वपूर्ण प्रश्न था कि भारत वास्तव में क्या है? और उसकी पहचान किस आधार पर बनेगी? इसके लिए देश में राष्ट्र के प्रति प्रेम, सम्मान और देश के लिए मर मिटने की भावना को जागृत करना एक महत्वपूर्ण चुनौती थी। राजनैतिक रूप से तो लोगों ने राष्ट्र को जगाने की अलख जला ही रखी थी; साहित्य के माध्यम से भी राष्ट्रीयता की चेतना की आनि को जलाना जरूरी था। साहित्य की अलग- अलग विधा में जन-चेतना को जगाने का कार्य शुरू किया जा चुका था। नाटक एक ऐसी विधा है जो सीधी तरह से देश के हर मनुष्य चाहे वह अमीर हो या गरीब, शिक्षित हो या अशिक्षित, से जुड़ती है। विशेषतः हिंदी क्षेत्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द ने राष्ट्रीयता के उदय को दिशा देने में अप्रतिम भूमिका निभाई। इन्होने नाटक को केवल मनोरंजन का क्षेत्र ही नही अपित उसे राष्ट्रीय चेतना का मंच बना दिया । भारतेन्दु जी ने अपनी रचनाओं में भाषा, स्वदेशी अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक गौरव, ऐतिहासिक स्मृति, सामाजिक सुधार और औपनिवेशिक शोषण जैसे सभी दमन का समग्र चित्रण करके लोगों में राष्ट्रीयता की निर्मिति का प्रयास कर रहे थे। भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी, नीलदेवी, भारतेंदु हरिश्वद जैसे नाटक एक प्रयोगशाला की तरह काम करने लगे जहाँ राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न की जा रही थी।

बीज शब्दः: राष्ट्रीयता, राष्ट्रजागरण, ऐतिहासिक गौरव, स्वाधीनता, सामाजिक सुधार।

भूमिका:- राष्ट्र, सदैव मानव सभ्यता के इतिहास की महत्वपूर्ण अवधारणा रही है। राष्ट्र केवल एक भूमि ही नहीं, बल्कि साझा इतिहास, भाषा, रीति-रिवाज और मूल्यों से जुड़े लोगों का समूह होता है। राष्ट्र की एकता और सहिष्णुता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए सबसे पहले हम राष्ट्रीयता की परिभाषा, उसका स्वरूप, और उसके प्रतीकों को समझना बेहद आवश्यक है।

राष्ट्रीयता मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियों में से एक है, इस वृत्ति के प्रति रागात्मकता उसे अपने राष्ट्र को समृद्धशाली व उन्नत रूप से देखने के लिए तत्पर करती है।

राष्ट्रीयता एक सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक अवधारणा है जो साझा इतिहास, भावनाओं, संस्कृति, भाषा और मूल्यों पर आधारित होती है। यह एक भावनात्मक जुड़ाव है जो लोगों को एक राष्ट्र के रूप एकजुट करने में सहायक है। राष्ट्रीयता की भावना प्रबल होने पर मानव देशप्रेम से प्रेरित होकर राष्ट्र के कल्याण और सम्मान के लिए अपनी पूरी क्षमता से राष्ट्र की सेवा में योगदान देने लगता है। डॉ. गुलाबराय के अनुसार - "**एक सम्मिलित राजनीतिक अध्याय से बंधे हुए किसी विशिष्ट भौगोलिक इकाई के जन-समुदाय के पारस्परिक सहयोग और उन्नति की अभिलाषा से प्रेरित भू-भाग के लिए प्रेम और गर्व की भावना को राष्ट्रीयता कहते है**।"[1]

राष्ट्रीयता के कुछ तत्व होते हैं जो किसी राष्ट्र की एकता को मजबूत और समृद्ध बनाते हैं। ये तत्व राष्ट्र के नागरिकों में देश के प्रति गर्व और समर्पण की भावना को भर देते है। राष्ट्रीयता के कुछ तत्व जैसे- राष्ट्रीय एकता, देशभक्ति, स्वतंत्रता, धार्मिक सहिष्णुता, राष्ट्रीय गर्व व चेतना, मातृभूमि से लगाव, समान संस्कृति, कला, आदर्श, सम्मान, समान हित आदि होते हैं।

हिंदी साहित्य में भारतेन्दु के आगमन से देश में राष्ट्रीयता का विशेष स्वरुप दिखाई पड़ता है। देश परतंत्रता के आगोश में था। अंग्रेज तरह-तरह की नीतियाँ बनाकर देश का शोषण और देशवासियों पर अत्याचार कर रहे थे। ऐसे समय में राष्ट्रीय स्वतंत्रता एक मूल समस्या थी। भारतेंदु जी ने देश में हो रहे अत्याचार को दिखाने और देशवासियों को जगाने के लिए अपने नाटकों को माध्यम बनाकर नवजागरण व देशप्रेम की ज्योति जलाई। भारतेंदु जी राष्ट्रीय भावना एवं नवजागरण के अग्रदूत माने जाते हैं। उनके अधिकांश नाटकों में राष्ट्रीय चेतना व उसके विभिन्न तत्व समाहित दिखाई देते हैं। दशरथ ओझा लिखते हैं - "**भारतेंदु अपने ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक, प्रहसन आदि सभी नाटकों में यथास्थान और यथावसर देश की राष्ट्रीय चेतना को उत्तेजित करने का दृश्य उपस्थित करते रहे हैं।**"[2]

भारतेंदु जी का विचार था कि राष्ट्र का निर्माण केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नही बल्कि सांस्कृतिक, भाषाई, आर्थिक और सामाजिक स्तरों पर होता है। इसलिए उन्होंने अपनी रचनाओं में भाषा, स्वदेशी अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक गौरव, ऐतिहासिक घटनाओं की स्मृति, सामाजिक सुधार और औपनिवेशिक शोषण - सभी का समग्र चित्रण किया। उन्होंने अपने नाटक समाज को मनोरंजित करने के लिए नहीं लिखा बल्कि जनता को जगाने के लिए किया है। वे स्वयं कहते है कि नाटको में शिक्षोपदेश भरा रहना चाहिए। आगे हम उनके नाटकों के माध्यम से देखेगें कि किस तरह वे लोगों में राष्ट्रीयता की भावना को उजागर करते हैं।

भारतेंदु जी का नाटक 'भारत दुर्दशा" राष्ट्रीय चेतना से ओत प्रोत है। इस नाटक में उन्होंने देश की स्थिति का वर्णन और लोगों को जगाने का प्रयास किया है। उन्होंने भारत की करुण स्थिति का चित्रण इस नाटक में किया है। इस नाटक में प्रतीकात्मक शैल अपनाकर भारत की यथार्थता का चित्रण किया गया है। भारतेन्दु जी के नाटक का मूल विचार राष्ट्रप्रेम का संचार करना था। वे लिखते हैं-

रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई।
हा हा ! भारत दुर्दशा देखी न जाई ।।"[3]

नाटक की शुरुआत ही इस पंक्ति से होती है जो यह दर्शाती है कि भारत की स्थिति इतनी जर्जर हो चुकी है कि उसकी दशा अब देखने योग्य नहीं है। अंग्रेजो ने देश को लूट - लूट कर देश की दुर्दशा कर

दी है। अंग्रेजों ने देश का धन लूट कर अपने देश में भेजते थे, जिसके कारण भारत गरीब होता जो रहा था। आगे वे इसी को निम्न पंक्ति के माध्यम से बताते है –

"अंग्रेजराज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन विदेश चलि जात इहे अति ख्वारी ॥"[4]

भारतेंदु ने 'भारत दुर्दशा' नाटक में देश की तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थिति का गंभीर प्रदर्शन किया है। आर्थिक कमी के कारण देश में मंहगाई, अकाल की स्थिति, महामारी और दरिद्रता का चित्रण किया गया है। भारतमाता की इतनी दुर्गति हो चुकी चुकी है या कहे दीन हो चुकी है कि वह स्वयं पुकार रही है -

कोऊ नहि पकरत मेरो हाथ ।
बीस कोटि सुत होत फिरत मैं
हा हा होय अनाथ ॥"[5]

भारतमाता कहती है कि मेरे बीस करोड़ बेटे है लेकिन फिर भी मेरी ऐसी हालत हो चुकी है, जैसे मैं अनाथ होऊँ। इस प्रकार का दृश्य प्रदर्शित करके भारतेंदु जी देशवासियों में राष्ट्र प्रेम और देश में राष्ट्रीय एकता का भाव जगाना चाह रहें। साम्राज्यवादी पूँजी के प्रभाव से भारत में जो उद्योग धंधे चल रहे थे, वे कही न कहीं अभी भी भारतीय मानसिकता को गुलामी की जंजीर में जकड़े हुए है। उन्होने वेदांत पर तंज करते हुए कहा है कि वेदों ने बड़ा उपकार किया। सभी हिंदू ब्रह्म हो गए। किसी की इति-कर्तव्यता बाकी ही नहीं रही थी। ज्ञानी बनकर वे सभी हिंदु ईश्वर से विमुख हो चुके हैं और अभिमानी बन गए । जब अभिमान मनुष्य पर छाता है तो स्नेह मर जाता है। और जब स्नेह ही नहीं रहेगा तो देशोद्धार का प्रयत्न कहाँ और कौन करेगा? इसको हम इस पंक्ति से समझ सकते हैं-

"रचि के मत वेदांग को सबको ब्रह्म बनाय ।
हिंदुन पुरुषोत्तम कियो, तोहि हाथ अरु पाय ।।
तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहुभारी ।
छाई अब आलस - कुमति - कलह अधियारी ॥"[6]

इस प्रकार भारतेंदु जी देश के लोगों की अकर्मण्यता को दिखाकर नवचेतना जगाने की कोशिश करते हैं और देश के लिए देशभक्ति जगाते हैं।

भारतेंदु जी के नाटकों में अक्सर भारत के प्राचीन गौरव और समृद्धशाली इतिहास का स्मरण मिलता है ताकि भारत के लोगो के जनमानस में राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत कर सकें। भारत दुर्दशा में भी इन्होंने भारत के गौरवशाली इतिहास को वार्णित करके राष्ट्र के प्रति सहानुभूति पैदा करते है - **"हा ! जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, पाणिनी, शाक्यसिंह, बाणभट्ट प्रभृति कवियों के नाममात्र से अब भी सारे संसार से ऊंचा है, उस भारत की यह दशा। जिस भारतवर्ष के राजा चंद्रगुप्त और अशोक का शासन रूम रूस तक माना जाता था, उस भारत की यह दुर्दशा । जिस भारत में राम, युधिष्ठिर, नल, हरिश्चंद्र रंतिदेव शिवि इत्यादि पवित्र चरित्र के लोग हो गए हो, उसकी यह दशा ।"[7]**

'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक भी भारतेंद जी के राष्ट्रीय जागरण का प्रतीक बना। इस नाटक में भी उन्होंने देश के गौरवशाली इतिहास, देश के सामने उनके आदर्श, देश के लोगो का हित आदि राष्ट्रीयता के तत्वों को सामने लाया है। भारतेंदु जी ने समय-समय पर अतीत मे घटित घटनाओ और महान लोगों के त्याग और समर्पण की कहानी के माध्यम से देश में राष्ट्रीयता की भावना की लौ को उजागर करने का प्रयास करते रहे है। 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक में भी उन्होंने हरिश्चंद जैसे सत्यनिष्ठ और त्यागी व्यक्तित्व को दिखाकर एक आदर्श को प्रस्तुत किया है कि किस तरह उन्होंने हमेशा सत्य की राह पकड़ कर अपने जीवन में अनेक कष्टों को सहते हुए भी चलते हैं? विश्वामित्र और इंद्र जैसे देवों ने उनकी परिक्षा ली; उनका राज्य छीन लिया, पली सेविका बना दी गई और स्वयं सूर्यवंशी होने के बावजूद खुद को बेचकर चांडाल बन जाते है। बेटे के मृत्यु पर भी अपने मालिक की आजा मानकर अपनी पत्नी से कफन का आधा भाग माँगते है। इससे यह भी साबित होता है कि चाहे जितने भी कष्ट आए, हमे अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए और हमेशा सत्य की राह पर ही चलना चाहिए। इस आदर्श को हम इस पंक्ति के माध्यम से समझ सकते हैं- **"महाराज ! सत्य की तो मानो हरिश्चंद मूर्ति है। निःसंदेह ऐसे मनुष्यों के उत्तम होने**

से भारतभूमि का सिर केवल इनके स्मरणों से उस समय भी ऊँचा रहेगा जब यह पराधीन होकर हीनावस्था को प्राप्त करेगा।"[8]

इन पक्तियों से भारतेंदु जी भारत के लोगों में अपने अतीत से सबक लेकर देशप्रेम और कर्तव्य को सिखाना चाहते हैं। इस नाटक में एक और घटना, जो हमें अपना स्वार्थ छोड़कर अन्य भाई-बंधुओं के हित को भी ध्यान रखना सिखाती है। हरिश्चंद्र से प्रसन्न होकर जब महासिद्धि, निधि और प्रयोग आते हैं और कहते हैं कि हम आपके सेवक है, हमें स्वीकार करें तब भारतेंदु जी जगत के उद्धार के लिए उन्हें जरुरतमंद व्यक्तियों के पास भेज देते हैं। वे कहते हैं - **" यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हैं। तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जनों के और प्रयोग साधकों के पास जाओ ।"[9]**

इस त्याग से खुश होकर वे सभी बोलते है कि -**"हमीं लोगो की सिद्धि को बड़े-बड़े योगि मुनि पच मरते हैं, पर तुमने तृण की भाँति हमारा त्याग करके जगत का कल्याण किया।"[10]**

इस घटना के माध्यम से भारतेंदु जी राष्ट्र के कल्याण की भावना को जगाने का प्रयास किया है। भारतेंदु जी राष्ट्रीयता को केवल राजनीतिक अर्थ में न देखकर इसके लिए सामाजिक सुधार भी आवश्यक मानते हैं। उन्होंने स्त्री शिक्षा, कुप्रथाओं का विरोध, सामाजिक चेतना पर भी जोर दिया है। सामाजिक समानता को भारतेंदु जी ने प्रमुखता दी है। अपने नाटक 'नीलदेवी' में उन्होंने देश की स्वतंत्रता और सामाजिक समानता को दिखाया है। नीलदेवी के माध्यम से उन्होंने बताया है कि स्त्री उस देवी का प्रतीक है जो अपनी शक्ति नहीं भूलती और प्रचंड वीरों को भी ललकार कर मारती है। नीलदेवी एक ऐतिहासिक नाटक है जो हमारे इतिहास और भारत के भू-भाग के लिए यहाँ के वीरों ने अपनी जान तक दे दी। मुसलमान शरीफ जब छलपूर्वक भारत पर आक्रमण करता है तो हिंदू प्रदेश में अत्याचार फैल जाता है और लोग मारे जाते है, लेकिन यहाँ के राजपूत इससे न घबराकर उसका सामना करने को तैयार होते हैं। **" हे प्यारी! वे अधर्म से लड़े, हम तो अधर्म नहीं कर सकते । हम आर्यवंशी लोग धर्म छोड़कर लड़ना क्या जानै? जीते तो निजभूमि का उद्धार और मरे तो स्वर्ग। हमारे तो दोनों हाथ में लड्डू है।"[11]**

इस प्रकार से भारत के वीर छलपूर्ण युद्ध में भी अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए पीछे नहीं हटते बल्कि डटकर उसका मुकाबला करते हैं। उन्होने इसमे यह भी बताया है कि भारत के वीर युवक ही है जो भारत-माता का उद्धार कर सकते है जो अभी पराधीन हो गई है-

"स्वाधीनपनो बल धीरज सबहि नसैहै।
मंगलमय भारत भुव मसान हुवे जैहै।।
दुख ही दुख करिहै चारहु और प्रकाशा।
अब तजहू बीर बर भारत की सब आशा ।।" [12]

'नीलदेवी' नाटक स्त्रीयों को लक्ष्य करके लिखा गया है। भारतेन्दु जी ने यह दिखाया है कि वीर क्षत्राणी जिसे समाज में दबा दिया गया, वे पश्चिम की औरतों की तरह स्वतंत्र नहीं है, शिक्षित नहीं है, सिर्फ घरेलू काज में ढकेल दी गई हैं, वे समय या अवसर आने पर कैसा साहस कर सकती है।

"धन धन भारत की क्षत्राणि ।
वीरकन्यका वीरप्रसविनी वीरवधू जग-जानी ।।
सतीसिरोमणि धरमधुरंधर बुधि-बल धीरज खानी।
इनके जस की तिहूं लोक में
अमल धुजा फहरानी।।"[13]

नीलदेवी जिसने अपने पति और पुत्रों को युद्धादि विषय में सम्मति देती थी और सैनिकों में उत्साह तथा उन्हे प्रोत्साहित करती थी। अंत में पति को शत्रु के द्वारा मारे जाने और शव को कैद किए जाने पर नीलदेवी, नर्तकी बन कर शत्रु के यहाँ जाती है और शत्रु को मार देती है। इसमें भारतेंदु जी यह बताना चाहते है कि भारतीय नारियों के बिना देशप्रेम और स्वतंत्रता की आशा टेढ़ी खीर साबित होगी।

भारतेन्दु जी के नाटक 'अंधेर नगरी' में भ्रष्ट शासन पर व्यंग्य, व्यवस्था की आलोचना, जनता की स्थिति, विवेकहीन शासन से उत्पन्न सामाजिक संकट और सामूहिक कल्याण की चिंता व्यक्त की गई है। जैसा की नाम से ही पता चलता है, अंधेर नगरी यानी

जहाँ चारों तरफ अराजकता हो, सभी तरफ अन्याय फैला हो, उसी अंधेर नगरी का वर्णन किया है। इस नाटक के माध्यम से भारतेंदु जी ने यह बताया है कि इस प्रकार का भ्रष्ट शासन कभी भी राष्ट्र की प्रगति नहीं करने देता है। नाटक का प्रसिद्ध वाक्य- **"अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।"**[14] इस वाक्य में प्रतीको के माध्यम उस औपनिवेशिक व्यवस्था पर व्यंग्य करते है जो न्यायहीन, विवेकशून्य और जनता के हितों को नहीं देखती। हम जानते हैं कि राष्ट्रीय चेतना का अर्थ होता है कि सही शासन की मांग और अन्यायी शासन के प्रति प्रतिरोध। भारतेंदु जी व्यंग के माध्यम से जनता को आगाह करना चाहते है कि ऐसा शासन कभी भी किसी भी राष्ट्र को प्रगति नहीं करने देता। इस नाटक के माध्यम से यह भी बताते हैं कि जब हर वस्तु टके सेर बिक रही है, तब यह आर्थिक अव्यवस्था और प्रशासन की अज्ञानता का प्रतीक है। औपनिवेशिक शासन की गलत नीतियों की ओर संकेत करते है जो जनता की आर्थिक स्थिति को नष्ट कर रहीं है। गुरुजी अपने शिष्य गोबर्धनदास को समझाते है - **"तो बच्चा ऐसी नगरी में रहना उचित नही है, जहाँ टके सेर भाजी और टके शेर खाजा बिकता हो। मै तो इस शहर नगर में अब एक क्षण भी नहीं रहूंगा। देख मेरी बात मान, नहीं तो पीछे पछताएगा।"**[15] इस पंक्ति में गुरुजी के माध्यम से भारतेंदु जी देश के लोग को चेतावनी देते दिखाई दे रहें हैं कि अभी भी समय है, देशवासियों को मिलकर देश को ऐसे राजतंत्र से छुटकारा अवश्य दिलाना चाहिए नहीं तो देश में अराजकता फैल जाएगी।

निष्कर्ष :- इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु जी ने अपने नाटकों के माध्यम से देश में राष्ट्रीयता की चेतना उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं। भारतेंदु जी सच्चे देशभक्त, समाज सुधारक, नव जागरण के अगदूत माने जाते है। इन्होने प्रतीकात्मक शैली मे देशवासियों को जागृत करने का प्रयास किया। निराशा में डूबे समाज को धैर्य, साहस और मेहनत करके समस्याओं के निराकरण करने पर बल दिया। इन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक, प्रहसन आदि सभी प्रकार के नाटको मे यथास्थान देश की राष्ट्रीय भावना को जागृत किया। राष्ट्रीय चेतना जगाने का महत्वपूर्ण और प्रशंसनीय कार्य किया।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. राष्ट्रीयता, बाबू गुलबराय, प्रथम संस्करण, 1961, पृष्ठ – 2.
2. हिंदी नाटक : उद्भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, पृष्ठ – 208.
3. भारत दुर्दशा, संपादक - बिजेंद्र सिंघल, कला मंदिर, नई दिल्ली, पृष्ठ -13.
4. भारत दुर्दशा, संपादक - बिजेंद्र सिंघल, कला मंदिर, नई दिल्ली, पृष्ठ -14.
5. भारत दुर्दशा, संपादक - बिजेंद्र सिंघल, कला मंदिर, नई दिल्ली, पृष्ठ -15.
6. भारत दुर्दशा, संपादक - बिजेंद्र सिंघल, कला मंदिर, नई दिल्ली, पृष्ठ -18.
7. भारत दुर्दशा, संपादक - बिजेंद्र सिंघल, कला मंदिर, नई दिल्ली, पृष्ठ -34.
8. भारतेंदु नाटकावली, संपादक - ब्रजरत्नदास, प्रथम संस्करण, 1962, पृष्ठ -45.
9. भारतेंदु नाटकावली, संपादक - ब्रजरत्नदास, प्रथम संस्करण, 1962, पृष्ठ – 106.
10. भारतेंदु नाटकावली, संपादक - ब्रजरत्नदास, प्रथम संस्करण, 1962, पृष्ठ – 106.
11. भारतेंदु नाटकावली, संपादक - ब्रजरत्नदास, प्रथम संस्करण, 1962, पृष्ठ – 510.
12. भारतेंदु नाटकावली, संपादक - ब्रजरत्नदास, प्रथम संस्करण, 1962, पृष्ठ – 521.
13. भारतेंदु नाटकावली, संपादक - ब्रजरत्नदास, प्रथम संस्करण, 1962, पृष्ठ – 505.
14. अंधेर नगरी, भारतेंदु हरिश्चंद्र, भारत ज्ञान विज्ञान समिति, प्रथम संस्करण, 2007, पृष्ठ – 7.
15. अंधेर नगरी, भारतेंदु हरिश्चंद्र, भारत ज्ञान विज्ञान समिति, प्रथम संस्करण, 2007, पृष्ठ – 9.

•